5

किस तरह आखिरकार मैं हिंदी में आया

शमशेर बहादुर सिंह

0956CH05

एक ऐसी बात–एक ऐसा जुमला[1]–मुझसे कह दिया गया था कि मैं जिस हालत में था, उसी हालत में और जो कुछ पाँच-सात रुपये मेरे पास थे, उन्हीं को लेकर दिल्ली के लिए पहली ही बस जो मुझे मिलती थी, चुपचाप उसी पर चढ़ा और चल दिया।

तय कर लिया कि हाँ, अब मुझे जो भी काम करना है, करना शुरू कर देना चाहिए! दिल में, दिमाग में, यही समाया हुआ था कि वह काम–पेंटिंग है; इसी की शिक्षा अब मुझे लेनी है और फ़ौरन। उकील आर्ट स्कूल का नाम भर मैंने सुन रखा था; दिल्ली में कहाँ है, यह पता न था...खैर, किस्सा मुख्तसर[2] कि मेरा इम्तिहान लेकर और मेरा शौक देखकर मुझे बिला-फ़ीस के भर्ती कर लिया गया।

मैंने दो-तीन जगहों के बाद करोल बाग में लबे-सड़क[3] एक कमरा लिया और रोज़ाना वहाँ से कनाट प्लेस को सुबह की क्लास में पहुँचने लगा।

1. वाक्य 2. संक्षिप्त, साररूप 3. सड़क के किनारे

शमशेर की एक कलाकृति

रास्ते में कभी-कभी चलते-चलते ड्राइंग भी बनाता और कभी-कभी या साथ-साथ कविताएँ भी लिखता। इसका ज़रा भी खयाल या वहमो-गुमान न था कि ये कविताएँ कभी प्रकाशित होंगी। बस, मन की मौज या तरंग या कोई टीस-सी थी। चुनाँचे[1] अंग्रेज़ी में-जैसी भी कुछ और उर्दू में (गज़ल[2] के शेर[3]) लिखता। और हर चीज़ और हर चेहरे को बगौर देखता कि उसमें अपनी ड्राइंग के लिए क्या तत्व खोज सकता हूँ या पा सकता हूँ या पा सकूँगा। आँखें थक जाती थीं, बहुत थक जाती थीं, मगर उस खोज का, हर चीज़ और चेहरे और दृश्य या स्थिति और गति का, अपना विशिष्ट आकर्षण कम न होता था। बस आँखों की ही मजबूरी थी। कभी-कभी तेज बहादुर (मेरे भाई) कुछ रुपये भेज देते थे या साइनबोर्ड पेंट करके कुछ सहारा कर लेता था। मेरे साथ एक पत्रकार महोदय भी आकर रहने लगे थे; महाराष्ट्री; बेकार थे, तीस-चालीस के बीच में; वह इलाहाबाद यूनिवर्सिटी के होस्टलों का कभी-कभी ज़िक्र करते। 'इलाहाबाद, माई वीकनेस!'

अंदर से मेरा हृदय बहुत उद्विग्न रहता। यद्यपि अपने को दृश्यों और चित्रों में खो देने की मुझमें शक्ति थी; मगर अंदर से दुखी था। पत्नी का देहांत, टी.बी. से, हो चुका था। दिल्ली की सड़कों पर अकेला। एकदम अकेला। और बस, घूमता-घूमता, कविताएँ घसीटता या स्केच; और अपनी खोली में आकर...अपना अकेलापन खोकर बोर होता।

मेरे कवि मित्र और बी.ए. के सहपाठी नरेंद्र शर्मा एम.ए. कर चुके थे और दिल्ली में एक बार उनसे मुकालत भी हुई थी। पता नहीं वह कांग्रेस की राजनीति में संलग्न थे या कोई पत्रकारी वसीला[4] खोज रहे थे। तभी एक बार बच्चन स्टूडियो में आए। क्लास खत्म हो चुकी थी। मैं जा चुका था। वह एक नोट छोड़ गए मेरे लिए। मुझे नहीं याद कि उसमें क्या लिखा था; मगर वह एक बहुत मुख्तसर-सा और अच्छा-सा नोट था। मैंने कहीं बहुत गहराई से अपने को कृतज्ञ महसूस किया।

1. अतः, इसलिए, इस प्रकार 2. फ़ारसी और उर्दू में मुक्तक काव्य का एक प्रकार 3. गज़ल के दो चरण 4. ज़रिया, सहारा

मेरी बहुत ही बुरी आदत है, पत्रों का जवाब न देना। चाहे सैकड़ों जवाब बाज़ पत्रों के मन-ही-मन लिख-लिखकर हवा में साँस के साथ बिखराता रहूँ कई दिनों तक...! तो मेरे इस मौन की 'उपलब्धि' मेरी कृतज्ञता को व्यक्त करती हुई, एक कविता उभरी, अंग्रेज़ी में (अफ़सोस!), एक सॉनेट[1] (वह भी अतुकांत मुक्तछंद[2] में उफ़!) मगर उनको लिख लेने के बाद मैंने अपना जवाब उनको गोया[3] भेज दिया।

कई महीने निकल गए और घटनाचक्र से मैं देहरादून आ गया। अपनी ससुराल की केमिस्ट्स एंड ड्रगिस्ट्स की दुकान पर कंपाउंडरी सीखने लगा और अच्छी-खासी महारत मुझे टेढ़े-मेढ़े, अजूबा इबारत[4] में लिखे नुस्खों को पढ़ सकने की हो गई।

उसी वर्ष गुरुवर श्री शारदाचरण जी उकील ने देहरादून में ही पेंटिंग क्लास खोल ली थी, मेरे सौभाग्य से। (यह मेरे देहरादून लौटने का बहाना था) वह बंद हो गई तो मैं अकसर सोचता कि कविता और कला की दुनिया में—जो अब तक मेरी एकांत दुनिया रही थी, किसी से उसे गरज़ नहीं और अब भी बहुत कुछ वैसी ही बात है—अब मैं कहाँ हूँ? मेरी आंतरिक दिलचस्पियों से किसी को दिलचस्पी नहीं थी और मैं मुँह खोलकर कुछ नहीं कह सकता था किसी से। अपने से बड़ों का, गुरुजनों का अदब-लिहाज़, उनके सामने मुँह न खोलना, शायद मेरी घुट्टी में पड़ा था। अपनी बहुत ही आंतरिक एकांतिकता[5] का मैं अभ्यासी तो हो गया था, मगर अंदर से बहुत खिन्न और दुखी था और परिस्थिति के साथ सामंजस्य बैठाने की कोशिश कर रहा था। कर्तव्य, जहाँ तक हो सकता था।...ऐसे में न जाने क्यों एक दिन, यों ही, वही सॉनेट मैंने बच्चन को पोस्ट कर दिया। बच्चन गर्मियों की छुट्टियों में (सन् 37) देहरादून आए, ब्रजमोहन गुप्त के यहाँ ठहरे। इत्तिफ़ाक[6] देखिए कि यही (अब डॉक्टर) ब्रजमोहन गुप्त मेरे भाई के मित्र और उनके पिता जी मेरे पिता जी के पड़ोसी और मित्र रह चुके थे, देहरादून में ही। ब्रजमोहन के साथ बच्चन डिस्पेंसरी में आकर मुझसे मिले, एक दिन मेहमान भी रहे।

1. यूरोपीय कविता का एक लोकप्रिय छंद जिसका प्रयोग हिंदी कवियों ने भी किया है 2. परंपरागत छंद के बंधन से मुक्त कविता 3. मानो, जैसे 4. वाक्य की बनावट 5. एकाकीपन 6. संयोग

वह बच्चन की शुरू की धूम का ज़माना था। 'प्रबल झंझावात साथी!' देहरादून के उसी साल की यादगार है, किस ज़ोर की आँधी आई थी, उफ़! कितने बड़े-बड़े पेड़ बिछे पड़े थे सड़कों पर, टीन की छतें की छतें उड़ गई थीं। और बच्चन उसी आँधी-बारिश में एक गिरते हुए पेड़ के नीचे आ जाने से बाल-बाल बचे थे! (हम सबका सौभाग्य!) आज मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि जो तूफ़ान उनके मन और मस्तिष्क की दुनिया में गुज़र रहा था वह इससे भी कहीं प्रबल था। पत्नी-वियोग हाल ही में हुआ था। और कैसी पत्नी का वियोग! जो इस मस्त नृत्य करते शिव की उमा थी...आत्मा से अर्द्धांगिनी। निम्न मध्य वर्ग के सन्'30 के भावुक आदर्शों और उत्साहों और संघर्षों की युवा संगिनी! मैं कल्पना ही कर सकता हूँ कि वह कवि के लिए क्या कुछ न रही होगी! एक निश्छल कवि, जिसके आर-पार आप देख सकते हैं। बात का धनी, वाणी का धनी। हृदय मक्खन, संकल्प फ़ौलाद। ऐसे व्यक्ति की साथी।

हरिवंश राय बच्चन

एक और बरखा की याद आ गई। इस देहरादून की-सी नहीं। मगर भरी बरसात की झमाझम। बरखा, इलाहाबाद की। गाड़ी पर पहुँचना था। रात का वक्त। मेज़बान[1] इसरार[2] कर रहे हैं, "भई, इस वक्त कुली न ताँगा, कैसे जाओगे? सुबह तक रुक जाओ!" मगर नहीं। बच्चन ने बिस्तर काँधे पर रखा और स्टेशन की तरफ़ रवाना हो गए। जहाँ पहुँचना था वक्त पर पहुँचे।

इलाहाबाद मुझे बच्चन ही खींचकर ला सकते थे। कोई इस संभावना की कल्पना भी नहीं कर सकता था। मैं स्वयं नहीं। और उस पर मैं बच्चन को तब जानता भी कितना था! बराय नाम[3]। मगर उस परिचय के जितने भी क्षण थे सटीक थे। थे वो मात्र क्षण ही। आजकल की तरह ही, मैं बहुत कम कहीं आता-जाता या किसी से मिलता-जुलता था।

1. आतिथ्य करने वाला 2. आग्रह 3. नाम के लिए, दिखाने को

मुझे इसकी कभी कोई ज़रूरत-सी न महसूस हुई—शायद ऐसा वहम मुझे था, जो वहम ही था कि मेरी निजी एकांत की दुनिया में मेरे साथ चलने वाला कोई नहीं है—और क्यों हो? खैर...

ये '36–'37, '37–'38 के साल थे।

...जी हाँ। तो, बच्चन ने मुझसे कहा, "तुम यहाँ रहोगे तो मर जाओगे। चलो इलाहाबाद और एम.ए. करो..." इत्यादि। और हमारी दुकान पर बैठने वाले देहरादून के प्रसिद्ध डाक्टर मुझसे कह रहे थे, "तुम इलाहाबाद जाएगा तो मर जाएगा!" मगर मैं तो देख चुका था कि फेफड़े के मरीज़ों के लिए, गरीब-गुरबा के लिए, वह क्या नुस्खा लिखते थे: 'कैल्सियम लैक्टेट, थ्री टाइम्स अ-डे।' कैल्सियम लैक्टेट उन दिनों दो आने में एक आउंस आता था। मैं अपने दिल में बेफ़िक्र था।

इलाहाबाद आया, तो बच्चन ने क्या किया? बच्चन के पिता मेरे लोकल गार्जियन के खाने में दर्ज हुए। उन्होंने उर्दू-फ़ारसी की सूफ़ी नज़्मों का एक संग्रह बड़े स्नेह से मुझे दिया था। वह आशीर्वाद अर्से तक मेरे साथ रहा और एक अर्थ में अब भी है। और बच्चन ने एम.ए. प्रीवियस और फ़ाइनल के दोनों सालों का ज़िम्मा लिया और कहा, "देखो जब भी तुम इस काबिल हो जाओ, (यानी तुम्हारी नौकरी लग जाए), तब वापस कर देना। चिंता मत करो।" न इस काबिल हुआ, और न मैंने चिंता की।

बच्चन का प्लान यह था कि मैं किसी तरह एक काम का आदमी बन जाऊँ। उनके स्वयं अंग्रेज़ी में फाइनल कर लेने—दस साल की मास्टरी के बाद—और बी.टी. कर लेने के साथ-साथ मैं भी यूनिवर्सिटी से डिग्री लेकर फ़ारिग हो जाऊँ! ताकि कहीं पैर जमाकर खड़ा हो सकूँ। सो कहाँ होना था! कहीं न कहीं यह बात, पिता जी की सरकारी नौकरी को देखकर, मेरे दिल मे बैठ गई थी कि नौकरी नहीं करनी है। मैंने कभी कोई तर्क-वितर्क अपने-आपसे नहीं किया। मेरा खयाल है और अब मैं साफ़-साफ़ देखता हूँ और कह सकता हूँ कि यह बस, घोंचूपने की हद थी। (और, पलायन?)

हिंदू बोर्डिंग हाउस के कॉमन रूम में एक सीट मुझे फ्री मिल गई थी और पंत जी की सहज कृपा से (मैं कभी नहीं भूलूँगा) इंडियन प्रेस से अनुवाद का काम।

अगर सचमुच कोई बात मेरी समझ में आती थी तो वह एक यही कि अब मुझे कविता...हिंदी कविता गंभीरता से लिखनी है, जिससे कि मेरा रब्त[1] बिलकुल छूट चुका था, भाषा और उसका शिल्प लगभग अजनबी-से हो चले थे। (आखिर हिंदी फ़र्स्ट फ़ार्म तो मेरी कभी रही नहीं थी, और घर में खालिस उर्दू के ही वातावरण में पला था। बी.ए. में भी उर्दू ही एक विषय लिया था।) गज़ल मेरी भावुकता और आंतरिक अभावों का, अपने तौर पर, भली-बुरी एक मौन साथी थी। जैसी भी कुछ थी, अपनी थी।...शायद विषयांतर हो रहा था। मगर बच्चन मेरे जिस साहित्यिक मोड़, मेरे हिंदी के पुनर्संस्कार के प्रमुख कारण बने, मैं उसको यहाँ कुछ स्पष्ट करना चाहता हूँ। एक बार पहले भी सन्'33 में प्रीवियस का इम्तिहान दिए बिना ही यूनिवर्सिटी छोड़कर जा चुका था, मगर तब तक कुछ रचनाएँ 'सरस्वती' और 'चाँद' में छप चुकी थीं और बच्चन ने 'अभ्युदय' में प्रकाशित मेरे एक सॉनेट को पसंद किया था और कहा था कि वास्तव में यह खालिस सॉनेट है (यद्यपि मुझे उनसे मतभेद है)। बहरहाल।...तो, सन्'37 में भाषा यानी हिंदी मुझसे छूट-सी चुकी थी। अभिव्यक्ति का माध्यम (मात्र और सदैव एकांततः अपने लिए) या तो अंग्रेज़ी था (अफ़सोस) या उर्दू गज़ल। हाँ, आज एक बात के लिए मैं अपने पछाँही, सीधे-सादे जाट परिवार और अपने बचपन के युग को धन्यवाद देता हूँ कि किसी भाषा को लेकर कभी कोई दीवार मेरे चारों तरफ़ खड़ी न हो सकी जो मेरे हृदय या मस्तिष्क को घेर लेती। अफ़सोस इतना ही है कि मैं जमकर कोई साधना भाषा या शिल्प की नहीं कर सका।

हिंदी ने क्यों मुझे उस समय अपनी ओर खींचा, इसका स्पष्ट कारण तो मेरी चेतना में निराला और पंत थे, उनसे प्राप्त संस्कार और इलाहाबाद-प्रवास और इलाहाबाद के हिंदी साहित्यिक वातावरण में मित्रों से मिलने वाला प्रोत्साहन। और हिंदी आज भी अपनी ओर खींचती है, बावजूद कम से कम मुझ जैसों को दुखी और विरक्त करने वाले अपने संकीर्ण, सांप्रदायिक वातावरण के।

1. संबंध, रिश्ता

(बच्चन इस वातावरण को आज मर्दानावार झेल ही नहीं रहे हैं, अपनी कविता में उच्च घोष से बार-बार बता भी रहे हैं कि यह वातावरण किसी भी जाति के सांस्कृतिक इतिहास में कैसी हीन-संकुचित मन:स्थिति का द्योतक होता है!)

मगर सन्'37 में मेरा हाल यह था, जैसे मैं फिर से तैरना सीख रहा हूँ—तीन सालों में बहुत कुछ भुला चुकने के बाद। मेरी अंतश्चेतना का यही स्वर था कि बच्चन शायद मुझे इसीलिए इलाहाबाद लाए हैं। वह मैदान में उतर चुके हैं...बस ज़रा आर्थिक रूप से निश्िंचत हो जाने की देर है, बहुत से बहुत एक साल।...और मुझे भी मैदान में उतरना है; अपने तौर पर।...मुझे भी कमर कस लेनी है। यही भावमात्र मेरे मन में स्पष्ट था और मुख्य। और कोई भाव नहीं।

मुझे याद है कि बच्चन ने एक नए स्टैंज़ा[1] का प्रकार मुझे बताया था, 14 पंक्तियाँ, (सॉनेट नहीं!) और तुकों का प्रभावकारी विन्यास[2], बीच-बीच की अनेक पंक्तियाँ अतुकांत! मुझे बहुत आकर्षक लगा था वह 'प्रकार'। मैंने तबीयत पर ज़ोर डालकर उस 'प्रकार' में एक रचना की थी। (बच्चन को नहीं मालूम। मालूम किसी को भी नहीं। क्योंकि कभी छपी नहीं।) बच्चन के लिए तो वह कविता का एक बंद था, मेरे लिए वह एक बंद पूरी कविता हो गई। मगर मैंने जो लिखा वह वस्तुत: सॉनेट से अलग रूप न ले सका! (बच्चन ने तब तक उस अपने नवीन फ़ार्म में कोई कविता न रची थी।) खैर...

बच्चन के 'निशा-निमंत्रण' की कविताओं के रूप-प्रकार ने भी मुझे आकृष्ट किया। मैंने कुछ कविताएँ उस प्रकार में लिखने की कोशिश की, मगर मुझे बहुत मुश्किल जान पड़ा। नौ पंक्तियाँ, तीन स्टैंज़ा। प्राय: सभी कवि उस छंद में लिख रहे थे। मुझसे नहीं चला। अगर्चे कुछ पंक्तियाँ इस अभ्यास में शायद बुरी नहीं उतरीं। 'निशा-निमंत्रण के कवि के प्रति' मेरी एक कविता, जिस पर पंत जी के कुछ संशोधन भी हैं। ('रूपाभ'-काल में किए हुए)। मेरे पास आज भी, अप्रकाशित, सुरक्षित हैं। उसका भी बच्चन को पता नहीं!

1. स्थायी या टेक को छोड़कर गीत का चरण या अंतरा 2. व्यवस्थित करना, सजाना

मैं अपने कोर्स की ओर ध्यान नहीं दे रहा था। इससे बच्चन को क्षोभ[1] था। अतः मेरे मन में भी एक स्थायी संकोच। खैर।...दो साल पूरे करके, आखिर फ़ाइनल का इम्तिहान मैंने फिर भी नहीं ही दिया। बच्चन के साथ एक कवि-सम्मेलन में भी मैं उसी साल गया था। शायद गोरखपुर।

मैंने देखा कि कविता में मेरा नया अभ्यास निरर्थक नहीं गया; 'सरस्वती' में छपी एक कविता ने निराला जी का ध्यान आकृष्ट किया; कुछ निबंध भी मैंने लिखे। 'रूपाभ' आफ़िस में प्रारंभिक प्रशिक्षण लेकर मैं बनारस 'हंस' कार्यालय की 'कहानी' में चला गया। निश्चय ही हिंदी के साहित्यिक प्रांगण में बच्चन मुझे घसीट लाए थे।

आज मैं स्पष्ट देखता हूँ कि मेरे जीवन के इस भरपूर और कैसे आकस्मिक मोड़ के पीछे बच्चन की वह मौन-सजग-प्रतिभा रही है जो दूसरों को नया प्रातिभ[2] जीवन देने की नैसर्गिक[3] क्षमता रखती है। बच्चन से मैं हमेशा ही प्रायः दूर ही दूर रहता आया हूँ। यद्यपि दूर और नज़दीक की मेरी अपनी परिभाषा है। (और जिनके मैं अकसर बहुत 'नज़दीक' रहता आया, क्या उनसे बहुत दूर नहीं रहा?) बहुत-सी अनुपस्थित चीज़ें मेरे लिए उपस्थित ही के समान हैं और उपस्थित अनुपस्थित के। और मैं बहुत 'नज़दीक आने', बहुत मिलने-जुलने, चिट्ठी-पत्री आदि में विश्वास नहीं करता। बच्चन इसीलिए मेरे काफ़ी करीब रहे हैं मगर बेसिकली उसी तरह जैसे एक 'कवि' अपनी रचना के माध्यम से अपने करीब रहता है, अपने साथ रहता है, जिससे हम कभी नहीं मिलते या मिल सकते-युगों का व्यवधान होने के कारण। ये युग एक ही जगह प्रस्तुत भी हो सकते हैं। अतः मिलने या न मिलने का कोई अर्थ नहीं बैठता।...इसी तरह बच्चन अपने व्यक्तित्व में (जिसे कुल मिलाकर मैं उनकी श्रेष्ठ से श्रेष्ठ कविता से भी बड़ा आँकता हूँ) बहुतों की तरह, मेरे भी नज़दीक हैं और यह एक बिलकुल सहज और सामान्य और स्वाभाविक ही बात है। इसका सहज, स्वाभाविक और सामान्य होना मुझे अच्छा लगता है। मुझे बहुत अच्छा लगता है।

---

1. अंसतोष, व्याकुलता, दुख 2. प्रतिभा से युक्त 3. सहज, स्वाभाविक

(क्योंकि वह मुझे अपनी जगह पर मुक्त भी रखता है।) मेरा अनुमान है कि और भी सैकड़ों व्यक्तियों को ऐसा ही अनुभव हुआ होगा। अनुमान ही क्यों मुझको मालूम है कि हुआ है। मैं अपने इस अनुभव को विशिष्ट या विशेष नहीं मानता। वस्तुतः ऐसा कुछ विशिष्ट या विशेष दुनिया में नहीं हुआ करता। बच्चन जैसे लोग भी दुनिया में हुआ करते हैं और वह हमेशा ही ऐसे होते हैं। असाधारण कहकर मैं उनकी मर्यादा कम नहीं करना चाहता। मगर यह साधारण और सहज प्रायः दुष्प्राप्य[1] भी है। बात अजब है, मगर सच है।

प्रश्न-अभ्यास

1. वह ऐसी कौन सी बात रही होगी जिसने लेखक को दिल्ली जाने के लिए बाध्य कर दिया?
2. लेखक को अंग्रेज़ी में कविता लिखने का अफ़सोस क्यों रहा होगा?
3. अपनी कल्पना से लिखिए कि बच्चन ने लेखक के लिए 'नोट' में क्या लिखा होगा?
4. लेखक ने बच्चन के व्यक्तित्व के किन-किन रूपों को उभारा है?
5. बच्चन के अतिरिक्त लेखक को अन्य किन लोगों का तथा किस प्रकार का सहयोग मिला?
6. लेखक के हिंदी लेखन में कदम रखने का क्रमानुसार वर्णन कीजिए।
7. लेखक ने अपने जीवन में जिन कठिनाइयों को झेला है, उनके बारे में लिखिए।

1. जिसका मिलना कठिन हो

लेखक-परिचय
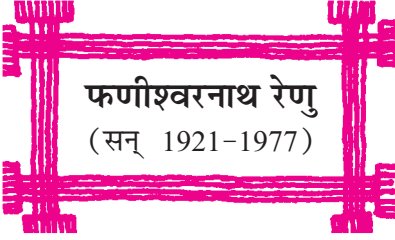
फणीश्वरनाथ रेणु
(सन् 1921-1977)

प्रसिद्ध कथाकार फणीश्वरनाथ रेणु का जन्म गाँव औराही हिंगना (ज़िला पूर्णिया, बिहार) में हुआ और स्कूली शिक्षा नेपाल में। सन् 1942 के आज़ादी के आंदोलन के प्रमुख सेनानी रहे रेणु ने नेपाल की सशस्त्र क्रांति और राजनीति में भी सक्रिय भागीदारी की।

आंचलिक कथाकार के रूप में विख्यात रेणु ने ग्रामीण जीवन का गहन रागात्मक और रसमय चित्र खींचा है। अपनी विशिष्ट भाषा-शैली द्वारा उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को नया आयाम दिया।

प्रमुख कृतियाँ—**मैला आँचल, परती परिकथा, कितने चौराहे** (उपन्यास); **ठुमरी, आदिम रात्रि की महक, अगिनखोर** (कहानी-संग्रह); **ऋणजल-धनजल, नेपाली क्रांति कथा** (रिपोर्ताज)।
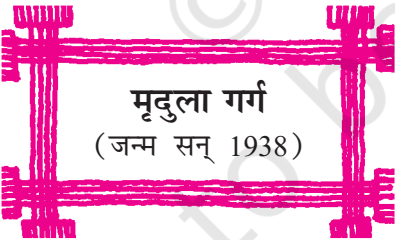
मृदुला गर्ग
(जन्म सन् 1938)

समकालीन हिंदी कथा-साहित्य की महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर मृदुला गर्ग का जन्म कोलकाता में हुआ। उन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय से एम.ए. (अर्थशास्त्र) किया। भारत के विभिन्न शहरों में रहने के बाद सन् 1974 से दिल्ली में रहकर स्वतंत्र लेखन। कथा-साहित्य के अलावा उन्होंने अपने समय और समाज की समस्याओं पर वैचारिक निबंध भी लिखे हैं। मृदुला गर्ग ने कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर गद्य-लेखन की प्रचलित परिपाटी को तोड़ा है।

प्रमुख कृतियाँ–**उसके हिस्से की धूप, अनित्य, चित्तकोबरा, कठगुलाब** (उपन्यास); **संगति-विसंगति** (दो खंडों में संपूर्ण कहानियाँ); **रंग-ढंग, चुकते नहीं सवाल** (निबंध-संग्रह)।
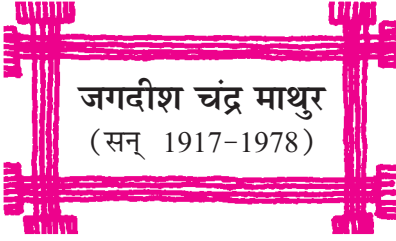
सुपरिचित नाटककार जगदीश चंद्र माथुर का जन्म खुर्जा (उत्तर प्रदेश) में हुआ और शिक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। बचपन से ही नाटकों में रुचि होने के कारण स्कूल, कॉलेज के सांस्कृतिक उत्सवों में नाट्य लेखन, निर्देशन और अभिनय करते रहे। आगे चलकर यही शौक सृजन में परिणित हो गया।

जगदीश चंद्र माथुर के नाटकों में विविधता है। ऐतिहासिक नाटकों के साथ-साथ उन्होंने सामाजिक समस्याओं से जुड़े एकांकी-नाटक लिखे हैं। उनके कुछ व्यंग्य प्रधान एकांकी चर्चित रहे हैं।

प्रमुख कृतियाँ–**कोणार्क, दशरथ नंदन, शारदीया, पहला राजा** (नाटक); **भोर का तारा, ओ मेरे सपने** (एकांकी-संग्रह)।
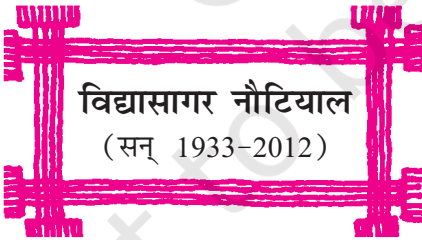
समसामयिक कथा-लेखक विद्यासागर नौटियाल का जन्म माली देवल गाँव (टिहरी गढ़वाल, उत्तरांचल) में हुआ और उच्च शिक्षा वाराणसी से।

पहाड़ी जीवन विशेषकर टिहरी गढ़वाल के जीवन-यथार्थ के कुशल चितेरे नौटियाल जी की कथा-भाषा में मिट्टी की सौंधी गंध रची-बसी है।

प्रमुख कृतियाँ–**टिहरी की कहानियाँ, सुच्ची डोर** (कहानी-संग्रह); **उलझे रिश्ते, बीम अकेली, सूरज सबका है, उत्तर बायाँ है, झुंड से बिछुड़ा** (उपन्यास); **मोहन गाता जाएगा** (आत्मकथ्य)।

शमशेर बहादुर सिंह
(सन् 1911-1993)
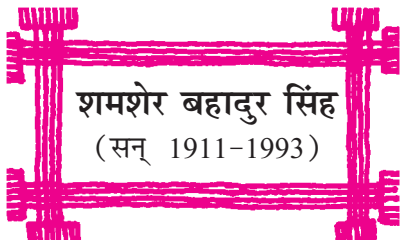
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता के प्रमुख कवि शमशेर बहादुर सिंह का जन्म देहरादून (उत्तरांचल) में हुआ और शिक्षा देहरादून एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय से। प्रसिद्ध चित्रकार उकील-बंधुओं से उन्होंने कला-प्रशिक्षण लिया।

अनूठे काव्य-बिंबों का सृजन करने वाले शमशेर केवल असाधारण कवि ही नहीं, एक अनूठे गद्य-लेखक भी हैं। 'दोआब', 'प्लाट का मोर्चा', जैसी गद्य रचनाओं के माध्यम से उनके विशिष्ट गद्यकार के रूप को पहचाना जा सकता है।

प्रमुख कृतियाँ–**कुछ कविताएँ, कुछ और कविताएँ, चुका भी नहीं हूँ मैं, इतने पास अपने, काल तुझसे होड़ है मेरी** (काव्य-संग्रह); **कुछ गद्य रचनाएँ, कुछ और गद्य रचनाएँ** (गद्य-संग्रह)।